**ISSN Print:** 2394-7500
**ISSN Online:** 2394-5869
**Impact Factor:** 8.4
IJAR 2017; 3(4): 194-195
www.allresearchjournal.com
Received: 11-02-2017
Accepted: 15-03-2017

**डॉ. अरविन्द मैन्दोला**
सह–आचार्य चित्रकला,
राजकीय महाविद्यालय, बून्दी,
राजस्थान, भारत

**Corresponding Author:**
**डॉ. अरविन्द मैन्दोला**
सह–आचार्य चित्रकला,
राजकीय महाविद्यालय, बून्दी,
राजस्थान, भारत

# राजस्थानी लघुचित्रों का तकनीकी पक्ष

## डॉ. अरविन्द मैन्दोला

**सारांश**
राजस्थानी लघुचित्रों की तकनीकी विशिष्ठ परम्परा यहाँ के चित्रकार पीढ़ियों से अपनाते आ रहे हैं। यह सर्व विदित है कि लघुचित्र शैली के चित्रकार चित्रण के विभिन्न साधन एवं सामग्री का निर्माण चित्रकार स्वयं कर रहे हैं। उसमें विभिन्न प्रकार के रंग, तुलिकाओं, कागज, चित्र निर्माण सम्बन्धी स्थानीय पद्धति परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही हैं। प्रारम्भिक चित्रण में कागज के प्रचलन से ताड़पत्रों पर चित्रण करने की प्रथा थी। भारत में कागज का प्रयोग 13 वीं शताब्दी के बाद देखा जाता हैं। परम्परागत चित्रों के लघुचित्रों में फलक संयोजन को दो भागों में विभाजित किया जाता हैं। उदयपुर के घनश्याम शर्मा, नाथद्वारा के रेवा शंकर, भीलवाड़ा में बद्री लाल और जयपुर के कृपाल सिंह शेखावत, वेद पाल बन्नु शर्मा की चित्रशालाओं में ये बहुमूल्य साधन सामग्रीयाँ प्राचीन चित्रों की तैयारी एवं चित्रण आज भी विशेष महत्व रखती हैं।

**कूटशब्दः** परम्परागत, विशिष्ठ, सूचना सूत्र, तुलिकायें, ताड़पत्रीय लेखन, खेरताल, श्रावक प्रतिक्रमण, समरांगण सूत्रधार, लघुचित्र फलक, यर्थातवाद

## प्रस्तावना
राजस्थान लघु चित्रांकन की अपनी एक विशिष्ट परम्परा रही हैं, जिसे यहां के चित्रकार पीढ़ियों से अपनाते रहे हैं। साथ ही अपने अनुभवों एवं सुविधाओं के अनुसार चित्रण के कई नए तरीके भी खाजते रहे हैं। राजस्थान में चित्रकारों एवं चित्रण केन्द्रों में परम्परागत तकनीकी पक्ष आज भी प्रचलित हैं।
यह सर्वविदित है कि इस शैली में चित्रण के विभिन्न साधन एवं सामग्री का निर्माण चित्रकार स्वयं करते रहे हैं। उनमें विभिन्न प्रकार के रंग, तुलिकाओं, ताल पत्रों एवं कागच की सतहों पर चित्र निर्माण सम्बन्धी विभिन्न स्थानीय पद्वति परम्परा, प्राचीन काल से ही विरासत में मिली हैं। स्थानीय विशेषताओं का प्रभाव लगभग हर क्षेत्र में शैली और तकनीक दोनों पर ही पड़ता हैं। सूचना–सूत्र के रूप में प्राचीन आलेखों का अपना महत्व हैं। आदि रचनाओं में विष्णु धर्मोत्तर, 11 वीं शताब्दी का समरांगण सूत्रधार, अभिलषितार्थ–चिन्तामणि, शिल्प–रत्न (16 वीं शताब्दी) के अतिरिक्त आधुनिक विद्वानों में डॉ. आनन्द कुमार स्वामी, शिवराम मूर्त्ति और राघवन उल्लेखनीय हैं।

## चित्रों में प्रयुक्त कागज
राजस्थान लघुचित्र कागज पर ही अधिक बने है। भारत में ईसा से 327 वर्ष पूर्व रूई या कपडें की कतरनों से कागज बनाया गया था। कार्ल खंडालावाला ने सांगानेरी और कश्मीरी कागजों का उल्लेख किया हैं। पूना के अतिरिक्त आज के अन्य कई केन्द्रों पर भी अच्छा कागज बनने लग गया हैं। जहांगीर के समय में भी कागज उद्योग दानापुर, जूनापुर, मथुरा, काल्पी, सियालकोट, अहमदाबाद और दौलताबाद में पनप चुका था। इनके अतिरिक्त आज वर्षा में कागज बन रहा हैं। मेवाड़ में घोसुण्डा तथा जयपुर में माधोपुरी कागज प्रसिद्ध रहा है। जयपुर की तोजियों में दौलताबादी, अफसानी, गुजराती और सवाई जयपुरी कागजों का नामोल्लेख है।
प्रारम्भिक चित्रण में कागज के प्रचलन से पूर्व ताड़पत्रों पर लेखन एवं चित्रण कार्य करने की प्रथा थी। 1260 ई. एवं इससे पूर्व मेवाड़ में ताडपत्रों पर सचित्र ग्रंथ लिखे गए जिनमें आहड में चित्रित श्रावक प्रतिक्रमण सूत्त चूरिंग ताड़ पत्रों पर ही चित्रित हुआ। श्रीताड का प्रचलन मद्रास, सिलोन व बंगाल की ओर अधिक रहा हैं तथा खेरताड़ प्रायः गुजरात व राजस्थान क्षेत्र के राजपूत रियासतों में प्रचलित था यह ताड की छाल 37'', 3'' के आकार में चित्रण व लेखन हेतु कार्य में ली जाती थी। मेवाड़ में चित्रित श्रावक प्रतिक्रमण सूत्त चूरिंग तथा अन्य कई ग्रन्थों के लेखन में इन ताडों का ही प्रयोग किया हैं।

भारत में कागज का प्रयोग लेखन एवं चित्रण में 13 वी सदी पश्चात् ही देखा जाता है। मेवाड़ में इसी काल से ताडपत्रों तथाा उनके पश्चात् कागज पर चित्रण कार्य होने लगा। कागज का निर्माण स्थानीय विधियों से मेवाड़ से गोसुण्डा नामक गांव में बांस एवं सण की लुग्दियों से किया जाता था। चित्रों में विष्णु धर्मोत्तर पुराण, समरांगण सूत्रधार, चित्र लक्षण, समराइच्च कहा एवं आदर्शवाद एवं यर्थावाद का राजस्थानी लघुचित्र फलक संयोजन में भारतीय परम्परागत कला सिद्वातों के अनुरूप निर्वाह हुआ है।

## चित्रण प्रक्रिया

परम्परागत चित्र शैली के लघुचित्रों में फलक संयोजन को दो भागों में विभाजित किया गया हैं। पहले किनारे का आकार तथा दूसरा मध्य का आकार । यह दृष्टि केन्द्रित करके दर्शक की दृष्टि को चित्र में भली–भांति बांधने में समर्थ होती है। चित्रकार कागज को सर्वप्रथम वसली पर जमा कर चित्रण कार्य करता था। वसली बनाने हेतु एक पाटिये पर देशी कागज की एक परत पर दूसरी परत, आटे की लेही से चिपकाकर बनाते थे। उसमें जितने कागज अधिक जोड़े जाते उतनी ही मोटी वसली बन जाती हैं। इस पर चित्रकार सर्वप्रथम कसरा करके विषय वस्तु को साकार रूप में अंकन कार्य करता है। इस चित्र–संयोजन के पीछे उसकी साधना, चिन्तन, विचार एवं कलपनांए महत्वपूर्ण होती हैं। उनका अंकन करके अक्षी–कागज पर जो हिरण की पतली खाले से बनायी जाती थी। रेखांकन कर लेता हैं। जिसमें पुनअंकन से साठें हुए कागज पर टिपाई करके हल्के रंग का रेखांकन कर लिया जाता हैं। तत्पश्चात् तीन बार सफेदा से पूरे चित्र–फलक पर अस्तर किया जाता हैं। अस्तर के बाद सच्ची टिपाई में मुख्य रेखाएं एवं रंग संयोजन का कार्य पूरा किया जाता था। फिर अंग–प्रत्यंग का बारीक रेखाओं से खुलाई की जाती हैं। मोती मुहावरा के रूप में आकृतियों में मेहन्दी, आभूषण की चमक व आंख की ललाई आदि का सुक्ष्म अंकन होता है। तत्पश्चात् जीणा–ओढ़णा नाम से पारदर्शी कपड़ों पर बेल बूंटों, बिन्दियों एवं कपड़ों के आन्तरिक एवं उपरी प्रभाव को दर्शाया जाता था। अन्त में पटियें पर जमाकर वसली की जाती एवं नक्काशी तथा खतकसी हांसिया हिंगलू के लाल रंग से तथा उसमें एक सूत मोटी रेखा के पास दो बारीक रेखाएं खींचकर पूर्णता दी जाती थी औंर उसके उपरी भाग पर दोहा श्लोक आदि की पंक्ति लिख देते थे। इस पर भी अन्य कार्य सुनहरे व रूपहले रंगों में प्रयोग, चित्र की चमक लाने हेतु किया जाता था। तभी उसे पूर्ण चित्र की संज्ञा दी जाती थी। परम्परागत कला के ये तकनीकी विधि विधान हमें राजस्थान के कई चित्रण केन्द्रों में देखने को मिलते हैं। उदयपुर के श्री घनश्याम शर्मा नाथद्वारा में रेवा शंकर, भीलवाड़ा में श्री बद्री लाल तथा जयपुर में श्री कृपालसिंह शेखावत एवं श्री वेदपाल शर्मा की चित्रशालाओं में ये बहुमूल्य साधन–सामग्रियां प्राचीन चित्रों की तैयारी एवं चित्रण आज भी विशेष महत्व रखती है।

## तुलिका निर्माण

तूलिका का उल्लेख मेवाड़ के प्राचीन संदर्भों में मिलता हैं। समरांगण सूत्रधार में लेखनी कुर्चक के सूक्ष्म, मध्यमा एवं स्थूल किस्मों के प्रकार बताए गए हैं। जिसे वे बकरी, गिलहरी एवं उंट के बालों को काटकर पक्षी के पंखों , लोहे या तांबे के शंकु की नलियों में डालकर तैयार करते थे। डॉ. मोतीचन्द्र ने तूलिका हेतु परसियन बिल्ली एवं भैंस के बालों का भी उल्लेख किया हैं। गिलहरी के बालों से तूलिका निमार्ण का कार्य प्राचीन काल से ही होता रहा हैं। बारीक तूलिका हेतु मोर के पंखों की डंडी शंकु में डालकर उच्च श्रेणी की तुलिका बनाई जाती थी। उन्हीं तूलकाओं को पूरे वर्ष चित्रण कार्य में मोटे पतले एवं बारीक अंकन हेतु प्रयोग में लिया जाता रहा हैं। जिसका निर्माण पद्वति आज भी नाथद्वारा, किशनगढ़ के चित्रण केन्द्र एवं जयपुर के चित्रकार श्री बन्नू की चित्रशाला में विधिवत उपलब्ध हो सकती है।

## सन्दर्भ


1. वी.एस.भार्गव :– दि राइज ऑफ कछावाज इन ढूंढाड़ पृ. 12
2. रीता प्रताप :– आकृति, जनवरी – 1976 अंक 3
3. अशोक कुमार दास :– होमेज टू जयपुर, वोल्यूम – 30, पृ. 77–94
4. सुरेन्द्र सिंह शेखावत :– राजस्थानी चित्रकला, कोटा शैली, पृ. 84
5. कार्ल खण्डेलावाला :– वाल पेन्टिग फॉम आमेर, पृ.–10